बैंकों के माध्यम से, कॉर्पोरेट द्वारा सरकारी खजाने की लूट

सत्यवीर सिंह

13 दिसंबर को, संसद में पूछे गए एक सवाल के जवाब में, वित्त मंत्री ने एक अहम जानकारी दी. पिछले 5 सालों में, बैंकों द्वारा खारिज (Write Off) किया गया कुल क़र्ज़ 10,09,511 लाख करोड़ रुपये है. हालाँकि पूछा गया सवाल अधूरा था. साथ में ये भी पूछा जाना चाहिए था, कि चूँकि ये, वो सरकारी रक़म है, जिसे देश के उन लोगों पर टैक्स लगाकर वसूला गया है, जो दो जून की रोटी का जुगाड़ भी नहीं कर पाते. इसलिए जिन लोगों के क़र्ज़, बैंकों ने खारिज किए, इनके नाम-पते भी बताए जाएँ. रिज़र्व बैंक इन लोगों की जानकारी आरटीआई में भी देने से इंकार कर चुका है.

मोदी सरकार द्वारा सत्ता संभालने के बाद से, बैंकों द्वारा खारिज़ की गई सरकारी, मतलब जनता की, रक़म का ब्यौरा इस तरह है-

क्र स वर्ष खारिज़ किया गया बैंक क़र्ज़ (करोड़ में)	
1. 2014-15	60,197
2. 2015-16	72,501
3. 2016-17	1,07,028
4. 2017-18	1,62,733
5. 2018-19	2,36,725
6. 2019-20	2,37,876
7. 2020-21	1,85,038
8. 2021-22	1,74,966
कुल	**12,37,094**

8 साल में 12.37 लाख करोड़ की रक़म बट्टे खाते में डाली जा चुकी है. ज़ाहिर है, 10 साल में ये आंकड़ा 15 लाख करोड़ से ऊपर निकल जाएगा. हालाँकि ये आंकड़ा अधूरा है. इसमें कम से कम 15 प्रतिशत ब्याज जुड़ना चाहिए, क्योंकि जब कोई खाता एनपीए हो जाता है, तो ना सिर्फ उसमें, उसके बाद ब्याज नहीं लगता बल्कि उक्त खाते में पहले लगा वह ब्याज व दूसरी फ़ीस भी वापस खाते में जमा करने होते हैं, जिसकी वसूली नहीं हुई. चूँकि वे आंकडे नहीं दी गए हैं, इसलिए इस पहलू को नज़रंदाज़ किया जा रहा है.

एक आरटीआई के जवाब में रिज़र्व बैंक ये बता ही चुका है कि कांग्रेस के नेतृत्व वाली यू पी ए सरकार ने 2004 से 2014 के अपने 10 साल के कार्यकाल में कुल 2,20,330 करोड़ रुपये के क़र्ज़ खारिज़ किए. इन आंकड़ों के आधार पर हम कांग्रेसी और भाजपाई सरकारों की 'कार्य कुशलता' की तुलना कर सकते हैं. यूपीए के 10 साल में कुल 2.2 लाख करोड़ के मुकाबले, एनडीए के 10 साल में 15 लाख करोड़ के क़र्ज़ खारिज़ हुए!! क्यों दरबारी मीडिया 2014 चुनाव से पहले, हर रोज़ ये राग अलाप रहा था-- सरकार को नीतिगत लकवा (policy paralysis) मार गया है, मनमौन सिंह नहीं, दबंग प्रधानमंत्री चाहिए!! मोदी जी दिन में 18-18 घंटे क्या काम करते हैं? अगर किसी को अब भी ये समझ ना आ रहा हो तो क्या करें?

सत्ताधारी सरमाएदार वर्ग का चरित्र देखिए, जिस कांग्रेस ने पूरे 137 साल उनकी सेवा की, उसे ही छोड़ दिया. कॉर्पोरेट की नीति ही है; 'यूज़ एंड थ्रो'!! मुनाफ़ा ना दिला पाए, तो सरमाएदार अपने बाप को भी 'थ्रो' कर देगा!! क्या कोई सोच सकता है; कि भाजपा से तो तुलना जाने दीजिए; हाल के गुजरात विधानसभा चुनाव में, कांग्रेस के पास, आम आदमी पार्टी जितना पैसा भी नहीं था!! चुनाव प्रचार ही नहीं कर पाए. अडानी-अम्बानी बिरादरी जानती है कि कभी अपनी 'यूज़ एंड थ्रो' नीति के तहत, उन्हें मोदी जी को फेंक देने की नौबत आई, तो केजरीवाल उनके काम आ सकता है क्योंकि उसमें भी लोगों को मूर्ख बनाने की क्षमता, उन्हें राहुल गाँधी से ज्यादा नज़र आ रही है!! 'भारत जोड़ो यात्रा' लोकप्रिय हो रही है, लोग जुड़ रहे हैं लेकिन गटर मीडिया खामोश है. वह लोकप्रियता वोट नहीं दिला पा रही. इसका क्या मतलब है? मज़दूरों का खून और हड्डियाँ निचोड़ने वाली इस परजीवी, आदमखोर कॉर्पोरेट जमात को इससे मतलब नहीं कि भारत जुड़ता है या टूटता है. उसे तो बस सारा माल गटकना है वह भी तुरंत!! ये है, आज एकछत्र राज कर रही, वित्तीय पूंजी का जलवा!!

अपने विकास क्रम में, जब औद्योगिक पूंजी और बैंकिंग पूंजी, एक दूसरे में समा जाते हैं, तब विशालकाय और विनाशकारी वित्तीय पूंजी जन्म लेती है जो प्रस्थापित नियम-क़ायदे तोड़ते हुए दैत्याकार रूप लेती जाती है. आज, बैंकों के बोर्ड में कॉर्पोरेट और कॉर्पोरेट कंपनियों के बोर्ड में बैंकों के सर्वोच्च अधिकारी, डायरेक्टर बन रहे हैं. इसका क्या मतलब है? सारा सरकारी ख़ज़ाना उनका ही है भले, जीएसटी के ज़रिए, हर महीने 1.5 लाख करोड़ रुपये की दर से, वह रक़म देश के कंगाल 'भाइयों-बहनों' से ही क्यों ना वसूली जा रही हो!! इसीलिए आजकल एक और चर्चा भी दरबारी मीडिया में शुरू हो गई है. 'व्यापर में सरकार का क्या काम, उसे बीच से हट जाना चाहिए. 'कम से कम सरकार, ज्यादा से ज्यादा शासन (governance)!!

बैंक क़र्ज़ खारिज़ करने (Write Off) का गोरखधंधा, आख़िर है क्या? इन पंक्तियों का लेखक, 1981 में सरकारी बैंक की नोकरी में लगा था. उस वक़्त भी कुछ क़र्ज़ खारिज़ होते थे. बैंकों का दिशा-निर्देश था कि कुल क़र्ज़ का 1 प्रतिशत, समाज के अत्यंत निर्धन तबक़े को बगैर किसी प्रॉपर्टी या गारंटी लिए मुहैया कराया जाए. ये क़र्ज़ अत्यंत कम दर, 4 प्रतिशत पर दिए जाते थे. अत्यंत कंगाली का जीवन जीने वाले, ये लोग भी अपना पेट काटकर पैसे भरते थे. लेकिन जब उनमें से किसी की मौत हो जाती थी, तब कुछ बक़ाया रह जाता था. मार्च में बैंकों की वार्षिक खातेबंदी के वक़्त वह क़र्ज़ खारिज कर, बट्टे खाते में डाल दिया जाता था. ग़रीबी हटाने के नाम पर, पूंजीवाद ने भी कैसे-कैसे छल-कपट किए हैं!!

1991 आते-आते, देसी पूंजी उस आकार की हो चुकी थी कि वह देश की सीमाओं को लांघकर, दुनिया के बाज़ारों की लूट में पश्चिमी देशों के धन-पशुओं से प्रतियोगिता कर सके. इसीलिए उनकी ताबेदार सरकार, वैश्वीकरण की नीति लाई. आपको, अगर दूसरे देशों के बाज़ार को लूटना है तो अपने बाज़ार को भी खोलना पड़ेगा. निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण ने पूंजी की नाक में पड़ी नकेल निकाल दी. वित्तीय पूंजी अब कुलाचें भरने लगी. पूंजी-बाज़ार का क़ायदा है- 'जो

सक्षम है वह जिएगा जो अक्षम है वह मरेगा'. देश के बैंकों के कार- भार में विश्व में प्रचलित नीतियाँ लागू हुई. स्वित्ज़रलैंड के बासेल शहर में हुई बैठक में, बैंकों की आमदनी निर्धारण करने के लिए नियम तय हुए जिन्हें सारे देशों को मानना ज़रूरी कर दिया गया.

'बासेल सिफारिशों' के अनुसार बैंक, तब ही क़र्ज़ खातों में ब्याज लगाकर उसे आमदनी में गिन सकते हैं, जब उसकी असलियत में वसूली हुई हो. उससे पहले, बैंक, हर छमाही/ तिमाही ब्याज लगाकर आमदनी में गिनते जाते थे, भले उसकी वसूली हुई हो अथवा नहीं. अब शुरू हुआ, बैंकों की आमदनी में से, वसूली के हिसाब से मुश्किल खातों, मतलब एनपीए के लिए, संभावित जोखिम के हिसाब से 10प्रतिशत, 20 प्रतिशत, 50 प्रतिशत का प्रावधान (provisioning) करने का नियम. परिणामस्वरूप, सारे बैंक घाटे में चले गए. उस घाटे की भरपाई, सरकारी ख़ज़ाने से, मतलब टैक्स द्वारा लोगों से वसूली गई रक़म से की जाने लगी. व्यवस्था जनित बोझ, आम ग़रीब लोगों पर डाल दिया जाने लगा.

इस व्यवस्था का दस्तूर ही ये है, भले सरकार किसी भी पार्टी की क्यों ना हो. आर्थिक संकट जैसे-जैसे बढ़ता गया, 'बासेल कमेटी' का कोड़ा बैंकों पर तीखा होता गया. किसी क़र्ज़ की वसूली की उम्मीद, अगर बिलकुल ही ना बची हो तो, उसकी पूरी की पूरी रक़म, मतलब 100 प्रतिशत का प्रावधान करने का नियम लागू हुआ. ऐसे क़र्ज़ को 'डूबे हुए क़र्ज़ (Loss Assets) कहकर, सारे के सारे क़र्ज़ को ही बट्टे खाते डालकर, पूरा क़र्ज़ खारिज करने का दस्तूर क़ायम हो गया. बैंकों की कर्ज़ नीति की एक और अत्यंत पीड़ादायक ख़ासियत है. ग़रीबों द्वारा लिए गए क़र्ज़ में, बैंक, उनके पास जो भी माल-मत्ता है, सारे को गिरवीं रख लेते हैं. क़र्ज़ जमा ना कर पाने की स्थिति में, उसके घर पर चढ़ाई कर देते हैं, सब कुर्क कर लेते हैं, वाहन उठा लेते हैं. कई बार तो अपराधिक मुक़दमा चलाए बिना ही उन्हें उठा लेते हैं. लाखों किसान, क़र्ज़ ना भर पाने और बैंकों द्वारा उनकी ज़मीनों को बेचने की ज़िल्लत ना देख पाने के लिए आत्महत्या कर चुके हैं.

दूसरी ओर, उद्योगपतियों को दिए जाने वाले क़र्ज़ जितने बड़े होते जाते हैं, उतनी ही उसके ऐवज में ली जाने वाली सिक्यूरिटी कम होती जाती है. हज़ारों करोड़ वाले क़र्ज़ों में कुछ भी नहीं रहती. क़र्ज़ डूब जाने पर भी, कर्ज़दार कंपनी के डायरेक्टर, उसी शानो-शौक़त से अपना जीवन जी रहे होते हैं. बैंक अधिकारी उनकी कोठियों में घुसने की भी जुर्रत नहीं करते.

खारिज हो रहे क़र्ज़, दो श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं; पहला- मुनाफ़ा कम होते जाने, घाटा होने और परिणामत: व्यवसाय के डूब जाने से डूबे क़र्ज़. डूबा हुआ क़र्ज़ छोटा है, तो उसकी वसूली हो जाती है लेकिन बड़े क़र्ज़ डूबते हैं तो ना उसकी वसूली होती है और ना उसका रोना रोया जाता है. पूंजीवाद का दस्तूर है; मुनाफे का निजीकरण और घाटे का सामाजीकरण. अडानी-अम्बानियों को मुनाफा हुआ तो उनका और घाटा हुआ तो पूरी जनता का. बैंक की सारी जमा पूंजी भी अगर साफ़ हो गई, तो सरकार पूंजी निवेश करेगी, जिसकी भरपाई, या तो जनता पर टैक्स बढाकर की जाएगी, या, बैंक सेवा करों में वृद्धि करेंगे, मतलब, उसकी वसूली दूसरे ग्राहकों से करेंगे. माल्या, नीरव मोदी और जाने कितने गुजराती क़र्ज़ लेकर भाग गए, फिर भी बैंक आज मुनाफ़े में हैं. मतलब साफ़ है, उसकी वसूली ईमानदार ग्राहकों से हुई. दूसरा कारण है कि चूँकि वित्तीय पूंजी के मौजूदा दौर में औद्योगिक पूंजी और बैंकिंग पूंजी गड्ड-मड्ड हो गए हैं, ऐसे में, योजनाबद्ध तरीक़े से, क़र्ज़ डुबाने के लिए ही क़र्ज़ लिए-दिए जाते हैं. एक कंपनी के नाम पर क़र्ज़ लेना और उस क़र्ज़ को दूसरी कंपनी में इस्तेमाल (डाइवर्ट) कर लेना, आम बात है. पहला क़र्ज़ डूब जाता है. उसे सरकार, मतलब जनता के मत्थे मढ़ दिया जाता है, जबकि दूसरी कंपनी 'ब्लू चिप' कंपनी बनी रहती है.

तकनीकी विकास ने, आज, उत्पादन बढ़ाने की क्षमता को बहुत बढ़ा दिया है, लेकिन 80 प्रतिशत समाज का कंगालीकरण हो जाने के कारण, ख़रीद शक्ति शून्य हो चुकी है. उत्पादित माल बिक नहीं रहा. परिणामस्वरूप, आर्थिक संकट जानलेवा होता जा रहा है. छोटे उद्योग धंधे (स्स्स्ध), थोक में डूब रहे हैं. ये तब हो रहा है, जब 'छोटे' उद्योग की परिभाषा बदलकर, उसकी सीमा बढा दी गई है. जिस उद्योग में, प्लांट तथा मशीनरी में (ज़मीन की क़ीमत उसमें शामिल नहीं है) निवेश, 10 करोड़ तक है, वे सब उद्योग आज छोटे उद्योग कहलाते हैं.

पहले ये सीमा मात्र 60 लाख थी. फ़रीदाबाद में दो-तीन सबसे बड़े उद्योग छोड़ दिए जाएँ तो सारे उद्योग छोटे उद्योगों में ही आते हैं. मतलब बड़े उद्योग भी डूब रहे हैं. बैंगलोर स्थित संस्था, 'ग्लोबल अलायन्स फॉर मास एन्तेर्प्रेयूर्शिप' के शोध के अनुसार, मार्च 2022 के अंत में, छोटे और मध्यम उद्योगों द्वारा कुल उत्पादित माल बिकने पर 8.7 लाख करोड़ की वसूली बाक़ी है. ये उनके द्वारा बिके कुल माल का 80 प्रतिशत है. ये राशि 2020 में 46.6त्न तथा 2021 में 65.73त्न थी. जिन 'स्टार्ट अप' का ढोल पीटा गया था, उनमें 90त्न के क़रीब डूब चुके हैं. इनके द्वारा लिए क़र्ज़ भी डूब गए. इतने बड़े पैमाने पर छोटे उद्योगों की बदहाली ने ही बेरोज़गारी को इतना बढ़ाया है. इन मुद्दों पर चर्चा ना हो, इसीलिए दीपिका पदुकोने की बिकनी के रंग पर चर्चाएँ ज़ारी रखी जाती हैं!! इसीलिए एनडीटीवी को भी ख़रीदा जाना ज़रूरी है!!

2014 के बाद मोदी-राज में, बैंकों के डूबे हुए क़र्ज़ में हुए 'तूफानी विकास' के लिए, ये दो कारण तो ज़िम्मेदार हैं ही, एक और घातक कारण जुड़ गया है जिसके परिणामस्वरूप ये गोरखधंधा बहुत विकराल हो गया है. बैंकों ने अपने एनपीए, मतलब वे क़र्ज़ जिनकी वसूली संभव नहीं, छुपाने के लिए, पहले उन्हें एक शाखा में स्थानांतरित करना शुरू किया जिसे 'एसेट रिकवरी ब्रांच' कहा जाता था. उसके बाद उनका एक बैंक बनाने की बात हुई. अब निजी 'एसेट रिकवरी कंपनियां (ARC)' बन गई हैं, जिनके मालिक वही अडानी-अम्बानी बिरादरी है, जिनके क़र्ज़ डूबे हैं. योजनाबद्ध रूप से क़र्ज़ डुबाने की प्रक्रिया, तेज़ी से पूरी अर्थव्यवस्था का बेड़ा गर्क़ होने की ओर बढ़ रही है.

अडानी-अम्बानियों के तंतु तो आज शासन तंत्र में इतने गहरे पैठ चुके कि उनकी थाह पाना भी असंभव है. वित्तीय पूंजी, आज किस तरह काम कर रही है, उसे जानने के लिए, उनकी बिरादरी के एक छुटभैय्ये, पतंजली के मालिक और संघ परिवार के पुराने सेवक, लाला रामदेव की एक डील, बतौर बानगी प्रस्तुत है. इंदौर की एक खाद्य पदार्थ बनाने वाली कंपनी है, 'रूचि सोया'. स्टेट बैंक ने उसे 12,000 करोड़ का क़र्ज़ दिया जो डूब गया. मामला कंपनी लॉ ट्रिब्यूनल पहुंचा.

पतंजलि ने उसे 4,000 करोड़ में ख़रीद लिया. उसमें भी 3,000 करोड़ का क़र्ज़, उसी स्टेट बैंक ने दिया जिसका पहला क़र्ज़ डूबा था. डील के तुरंत बाद, कंपनी का 21.55 रु में बिक रहा शेयर, 1519.65 बिकने लगा. ये है, अनुलोम-विलोम के पीछे चल रहा असली 'योग'!! वित्त मंत्री ने, ये जो 1.32 लाख करोड़ की वसूली बताई है, वह इसी पद्धति से ही हुई है. दैत्याकार कॉर्पोरेट लोन, बैंक की 'मैनेजमेंट कमेटी' मंज़ूर करती हैं. इसलिए उनमें किसी भी टॉप अधिकारी की कोई ज़वाबदेही तय नहीं होती. क़र्ज़ मंज़ूरी दस्तावेज़ में, जानपूछकर, वितरणपूर्व अनुपालन सुनिश्चित करने की असंभव शर्तें नत्थी होती हैं, जिनका अनुपालन ना करने के लिए एजीएम या उनसे नीचे के 3312 बैंक अधिकारीयों पर कार्यवाही कर, दस लाख करोड़ रुपये डकार लिए गए हैं.

कॉर्पोरेट लूट का खेल इसी तरह ज़ारी रहा तो हमारा 'श्रालंका' बन जाना निश्चित है. हम तेज़ गति से बेड़ा गर्क़ होने की दिशा में बढ़ रहे हैं.